स्वामी विवेकानन्द और विश्व–बंधुत्त्व : एक समकालीन विमर्श

डॉ. सत्येन्द्र श्रीवास्तव*

संक्षेप

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में जिन विचारकों ने विश्व–बंधुत्त्व और उसकी आवश्यकता पर सर्वाधिक जोर दिया, उनमें स्वामी विवेकानन्द सर्वप्रमुख हैं। एक क्रांतिकारी युवा सन्यासी के रूप में 1893 के शिकागो विश्व धर्म–संसद में उनके विश्व–प्रसिद्ध व्याख्यान ने विश्व–पटल पर एक अमिट छाप छोड़ी।[1] 11 सितम्बर 1893 को उनके सम्बोधन के पहले वाक्याँश– 'अमेरिका के भाइयों और बहनों' ने लगभग सात हजार श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया और उनके सम्मान में वे लोग लगातार दो मिनट तक करतल ध्वनि करते रहे। यह टिप्पणी उस अद्वैत वेदान्त की व्यवहारिक अभिव्यक्ति थी, जिसमें 'स्व' व 'पर' का कोई भेद नहीं माना गया और जिसकी प्रस्तावना भारतीय संस्कृति में 'वसुधैव कुटुम्बकम'[2] के रूप में की गयी है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि विश्व–बंधुत्त्व की स्थापना में जो सबसे बड़े बाधक हैं, उनमें पंथवाद, धर्मांधता और धार्मिक दुराग्रह प्रमुख हैं, जिन्होंने मनुष्यों को विभिन्न अतिवादी सामाजिक और धार्मिक समूहों में विभाजित कर उन्हें उसी में सीमित कर दिया। इन समूहों की अतिवादी मान्यताओं ने पूरे विश्व को हिंसा व रक्तपात से भर दिया। भारतीय संस्कृति और हिन्दू धर्म इन सब विकृतियो से मुक्त रहा है ।लेकिन स्वामी विवेकानन्द इस बात की अनुशंसा नही कर रहे कि अन्य सभी धर्मों के अनुयायी हिन्दू धर्म का पालन करें, अपितु उनका इस जोर बात पर है कि कैसे सभी धर्मों को उदार बनाया जाए और उनमें सामंजस्य स्थापित किया जाए, कैसे धर्म में व्याप्त कुरीतियों और आडम्बरों को दूर कर उन्हें मानवीय बनाया जाए, जिसके केन्द्र में दया, प्रेम, पारस्परिकता, विश्व–बंधुत्व जैसे मूल्य हों क्योंकि सच्चा धर्म कभी भी लोगों को तोड़ता नहीं बल्कि जोड़ता है।

प्रमुख शब्द : हिन्दू धर्म, राष्ट्रवाद, धर्म संसद, विश्व बंधुत्व, मानवता, भारतीय संस्कृति

सहायक प्रोफेसर–दर्शनशास्त्र विभाग हंसराज कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली, satyendrasrivas@gmail-com 9711442957

उन्नीसवीं सदी के प्रखर दार्शनिको और राष्ट्रवादी चिंतको मे स्वामी विवेकानन्द सर्वप्रमुख हैं। एक क्रांतिकारी युवा सन्यासी के रूप में 1893 के शिकागो विश्व धर्म–संसद में उनके विश्व–प्रसिद्ध व्याख्यान ने विश्व–पटल पर एक अमिट छाप छोड़ी।[1] 11 सितम्बर 1893 को उनके सम्बोधन के पहले वाक्याँश– 'अमेरिका के भाइयों और बहनों' ने लगभग सात हजार श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया और उनके सम्मान में वे लोग लगातार दो मिनट तक करतल ध्वनि करते रहे। यह टिप्पणी उस अद्वैत वेदान्त की व्यवहारिक अभिव्यक्ति थी, जिसमें 'स्व' व 'पर' का कोई भेद नहीं माना गया और जिसकी प्रस्तावना भारतीय संस्कृति में 'वसुधैव कुटुम्बकम'[2] के रूप में की गयी है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि विश्व–बंधुत्त्व की स्थापना में जो सबसे बड़े बाधक हैं, उनमें पंथवाद, धर्मांधता और धार्मिक दुराग्रह प्रमुख हैं, जिन्होंने मनुष्यों को विभिन्न अतिवादी सामाजिक और धार्मिक समूहों में विभाजित कर उन्हें उसी में सीमित कर दिया। इन समूहों की अतिवादी मान्यताओं ने पूरे विश्व को हिंसा व रक्तपात से भर दिया। इस मनोवृत्ति पर चिन्ता व्यक्त करते हुए स्वामी जी ने विश्व धर्म–संसद के प्रारम्भिक उद्बोधन में ही कहा था –

पंथवाद, कट्टरतावाद और इसके विकृत वंशज, हठधर्मिता ने इस सुंदर धरती को बहुत दिनों तक अपने अधीन रखा। उन्होंने इसे हिंसा और रक्त से कई बार भिगोया, सभ्यता का विनाश किया तथा राष्ट्रों को निराशा के गर्त में धकेल दिया। यदि ये विकृत दानव नहीं होते तो मानव समाज आज की तुलना में ज्यादा विकसित होता। (द कंप्लीट वर्क्स ऑफ स्वामी विवेकानन्द, खंड 1 2015 पृ.4 कोलकताः अद्वैत आश्रम, आगे से सी डब्ल्यू एस वी के रूप में उद्धृत)

इस समस्या के समाधन हेतु विवेकानन्द जिस मूल्य–दृष्टि की प्रस्तावना कर रहे हैं वह हिन्दू धर्म से प्रभावित है क्योंकि इसने पूरी दुनिया को सार्वभौमिक स्वीकृति और सहिष्णुता का संदेश दिया। जैसा कि वे कहते हैं –

मुझे उस धर्म का अनुयायी होने का गौरव है, जिसने दुनिया को सार्वभौमिक स्वीकृति और सहनशीलता दोनों का पाठ पढ़ाया। हम केवल सार्वभौमिक सहिष्णुता में ही विश्वास नहीं करते अपितु हम सभी धर्मों को सत्य मानते हैं। मुझे गर्व है कि मैं उस राष्ट्र का निवासी हूँ जिसने इस पृथ्वी के सभी धर्मो और सभी राष्ट्रों के प्रताड़ित व बहिष्कृत जातियों को अपने यहाँ शरण दिया। [3] (सी डब्ल्यू एस वी 1 2015 पृ.3)

लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि विवेकानन्द इस बात की अनुशंसा कर रहे हैं कि अन्य सभी धर्मों के अनुयायी हिन्दू धर्म का पालन करें, अपितु उनका इस जोर बात पर है कि कैसे सभी धर्मों को उदार बनाया जाए और उनमें सामंजस्य स्थापित किया जाए, कैसे धर्म में व्याप्त कुरीतियों और आडम्बरों को दूर कर उन्हें मानवीय बनाया जाए, जिसके केन्द्र में दया, प्रेम, पारस्परिकता, विश्व–बंधुत्व जैसे मूल्य हों क्योंकि सच्चा धर्म कभी भी लोगों को तोड़ता नहीं बल्कि जोड़ता है। 27 सितम्बर 1893 को विश्व धर्म संसद के अन्तिम सत्र को सम्बोधित करते हुए वे कहते हैं–

धार्मिक एकता के समान–आधार के बारे में बहुत कुछ कहा जा चुका है। मैं यहाँ अपने सिद्धान्त के बारे में कुछ नहीं कहने जा रहा हूँ। किन्तु यदि कोई यहाँ यह कहे कि ऐसी एकता इन धर्मों में से किसी एक के विजय ओर अन्य धर्मों के पराजय से आएगी, तो उससे मेरा कहना है, भाई, आप एक असंभव उम्मीद लगाए हैं, क्या मैं यह चाहूँगा कि एक ईसाई हिन्दू बने? असंभव। क्या मैं यह चाहूँगा कि एक हिन्दू या बौद्ध, ईसाई बने? असंभव..... यदि धर्मों की इस संसद ने दुनिया को कुछ दिखाया है तो वह हैः दुनिया के समक्ष यह प्रमाणित हो गया है कि पवित्रता, शुचिता और दयालुता किसी चर्च के ऐकान्तिक अधिकार क्षेत्र में नहीं आते और प्रत्येक सम्प्रदाय में बहुत ही उदात्त चरित्र के अनुयायी रहे हैं।

इस प्रमाण के होते हुए भी यदि कोई केवल अपने ही धर्म के अस्तित्व और दूसरे धर्म के विनाश का स्वप्न देख रहा है तो उसके प्रति मेरी हृदय से सहानुभूति रहेगी, और मैं उसे बताऊंगा कि प्रत्येक धर्म की ध्वज पताका पर अब प्रतिरोध के बजाय शीघ्र ही यह लिखा होगाः 'संघर्ष नहीं, सहयोग', 'विध्वंस नहीं, समावेशन, 'मनमुटाव नहीं, सामंजस्य और शांति। (सी डब्ल्यू एस वी 1 2015 पृ. 24)

यह सर्व–विदित है कि विवेकानन्द के इन विश्व–बंधुत्व व सर्वसमावेशी विचारों ने केवल धर्म–संसद के प्रतिभागियों पर ही नहीं अपितु पूरे अमेरिकी जनता को भी गहरे स्तर तक प्रभावित किया। उनका उद्देश्य वहाँ अपने धर्म–विशेष की प्रशस्ति–गान मात्र करना नहीं था अपितु विभिन्न धर्मों के बीच सहयोग व सामंजस्य स्थापित करने का भी था, उनकी रूढ़ियों व मताग्रहों पर चोट भी करना था, जिससे उनमें हठवाद के बजाय मानवता के पुष्प ज्यादा सुगंधित तरीके से खिल सकें। विवेकानन्द के व्याख्यान के बारे में न्यूयार्क हेराल्ड ने 27 दिसम्बर 1893 के प्रकाशन में लिखा –

निःसंदेह रूप से विवेकानन्द धर्मों की इस संसद के सर्वोत्तम प्रतिनिधि थे। उनको सुनने के बाद हमें यह महसूस हुआ कि इस सुशिक्षित देश में ईसाई मिशनरियों को भेजना कितना मूर्खतापूर्ण कार्य है।[4](ज्योर्तिमयानन्द, 1988 पृ. 478)

यहाँ यह सवाल उठना बहुत ही प्रासंगिक है कि इस तीस साल के युवा संन्यासी ने, जो इस धर्म–संसद के लिए आमंत्रित भी नहीं था, ऐसा क्या कर दिया जिसने पूरे विश्व को केवल आकर्षित ही नहीं किया बल्कि उन पर अपनी एक अमिट छाप छोड़ी ? इसका बेहतरीन उत्तर फ्रांसीसी विद्वान रोमाँ रोलाँ ने दिया– 'जहाँ अन्य धर्म के प्रतिनिधियों ने अपने ईश्वर, अपने धर्म के ईश्वर के बारे में वक्तव्य दिए। वहीं एकमात्र उन्होंने ही सबके धर्म के ईश्वर की बात की और उन सभी को एक सार्वभौम सत्ता में समावेशित किया।'(रोमाँ रोलाँ, 2012 पृ.30) यह टिप्पणी विवेकानन्द के चिन्तन की वैश्विक दृष्टि की एक सशक्त अभिव्यक्ति है। उनके विचार देश–काल की सीमाओं से परे एक वैश्विक सरोकार वाले हैं। उनका राष्ट्रवाद अलगाववादी व एकांतिक न होकर समन्वयकारी है। 9 अगस्त 1895 को न्यूयार्क से प्रेषित एक पत्र में वे ई टी स्टर्डी को लिखते हैं–

निःसंदेह मुझे भारत से प्यार है। किन्तु प्रत्येक दिन मेरी दृष्टि अधिक निर्मल होती जा रही है। हमारे लिए भारत या इंग्लैंड या अमेरिका क्या हैं? हम तो उस ईश्वर के सेवक हैं, जिसे अज्ञानी लोग 'मनुष्य' कहते हैं। जड़ में पानी देने वाला क्या पूरे वृक्ष को नहीं सींचता है? (सी डब्ल्यू एस वी 8 1964 पृ. 349)

विडम्बना देखिए कि आज कुछ लोग, धर्म और राष्ट्रवाद की आलोचना में जी–जान से लगे हैं। इस प्रक्रिया में वे जर्मनी, इटली, जापान इत्यादि के उग्र–राष्ट्रवाद को आधार बनाते हैं। क्या यह उचित नहीं होगा कि वे एक बार विवेकानन्द के लेखों व व्याख्यानों को पढ़ें और अपनी समझ को परिमार्जित करें। 20 जनवरी 1963 को कलकत्ता(अब कोलकता) के एक कार्यक्रम में तत्कालीन राष्ट्रपति सर्वपल्ली राधकृष्णन ने कहा था कि विवेकानन्द ने लोगों के मन में देश–भक्ति का धर्म पोषित किया, यह देश–भक्ति किसी संकीर्णता के बजाए मानवता के धर्म की थी। वस्तुतः विवेकानन्द राष्ट्रीय गौरव को संकुचित सीमाओं से बहुत परे देखते थे और वेदान्त के अद्वैतवाद पर एक ऐसी दुनिया बनाना चाहते थे जो समस्त संघर्षों को दूर कर मानव–जाति को सम्पूर्णता के उस स्तर पर उठा सके, जो उसका अभीष्ट है। अपनी इस व्यापक–दृष्टि के बारे में उन्होंने मुहम्मद सरफराज हुसैन को अल्मोड़ा से 10 जून 1898 के पत्र में लिखा–

हम मानव–जाति को उस स्थान पर ले जाना चाहते है जहाँ न तो वेद, न तो बाइबिल और न ही कुरान होगा, फिर भी यह वेद, बाइबिल और कुरान के सामंजस्य से संभव होगा, मानव–जाति को यह पढ़ाया जाना चाहिए कि विभिन्न धर्म एक ही 'धर्म' जो कि एकतत्व है, के विविध अनुभव हैं। (सी डब्ल्यू एस वी 6 1978 पृ. 416)

यही कारण है कि धर्म के नाम पर होने वाले संघर्षों का उन्होंने दृढ़ता से खंडन किया क्योंकि ये लोग धर्म का मूल मन्तव्य ही नहीं जानते थे। वे लिखते हैं–
धर्म के बारे में कभी मत लड़ो..... धार्मिक झगड़े सदैव गौण व सतही बातों को लेकर होते हैं। जब शुचिता, आध्यात्मिकता दूर चले जाते हैं और आत्मा शुष्क हो जाती है, तभी टकराव होते हैं, उसके पहले नहीं।(सी डब्ल्यू एस वी 6 1978 पृ.127)

आज के समय की विडम्बना है कि लोगों में बहुत तेजी से धर्म के प्रति तो अभिरुचि बढ़ रही है लेकिन ज्यादातर वह कर्मकाण्ड तक ही सीमित है। ऐसे में उनमें दया, करुणा, परस्पर संवाद और सहयोग जैसी प्रवृत्तियां का अभाव दिखता है। ऐसे लोग या तो अतिशय कर्मकांडी हो गए हैं या फिर धर्म की एक सतही समझ रखते हुए अपनी अलग ही वायवीय दुनिया में व्यस्त हैं, जबकि विवेकानन्द का चिन्तन कर्मकांड या कोरे आदर्शवाद के बजाए यथार्थवादी था। उन्होंने धर्म और दर्शन की सैद्धांतिक मीमांसा के बजाए उनकी व्यावहारिक व्याख्या दी। उन्होंने इस आनुभविक जगत् में मानव सेवा को धर्म का आधारभूत लक्षण माना। जहाँ भारत के अन्य दार्शनिक सम्प्रदाय मोक्ष को जीवन का परम लक्ष्य मानते थे, वहीं विवेकानन्द का लक्ष्य पीड़ित मानवता की सेवा करना था। उन्होंने अपने 'आत्म' को 'विश्वात्म' में व 'स्व' को 'सर्व' में रूपान्तरित कर दिया। जैसा कि उन्होंने 1894 में स्वामी ब्रह्मानन्द को एक पत्र में लिखा–
मुझे मोक्ष या भक्ति की चिन्ता नहीं है, बजाए इसके मैं हजारों–हजार नरक भी भोग सकता हूँ, पर दूसरों की भलाई का काम अनवरत एक गिरते झरने की तरह करता रहूँगा– यही मेरा धर्म है।(सी डब्ल्यू एस वी 7 2013 पृ. 470)

एक व्यावहारिक वेदान्ती के रूप में उन्होंने अद्वैत का उपदेश अपने सभी अनुयायियों को दिया, जिसमें व्यक्ति 'मैं' के बजाए 'आप' पर ध्यान देता है। 18 नवम्बर 1896 को 'प्रैक्टिकल वेदान्त' पर लंदन में व्याख्यान देते हुए वे कहते हैं–
समस्त कल्याण, समस्त नैतिकता का आदर्श–वाक्य 'मैं' नहीं अपितु 'वह' है। ... आप ईश्वरवादी हैं या अनीश्वरवादी, अज्ञेयवादी हैं या वेदान्ती, ईसाई हैं या मुहम्मद, जो पहला पाठ आपको सीखना है वह यह कि स्वयं को भूल जाओ। (सी डब्ल्यू एस वी 2 1968 पृ.353)

जब धर्म में आडम्बर व कर्मकांड बहुत ज्यादा हो जाते हैं तो वह एक रूढ़ि बन जाता है। इस प्रक्रिया में सभी धार्मिक गतिविधियों का केन्द्र इस जगत् में रहने वाले मनुष्य के दुखों का निवारण न होकर एक काल्पनिक, अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति हो जाता है। विवेकानन्द धर्म के इस विरोधभासी स्वरूप से भलीभाँति परिचित थे, इसलिए उन्होंने हर जगह ऐसे धार्मिक आडम्बरों का न केवल खण्डन किया अपितु अपने कार्य–व्यवहार में भी मानव–सेवा को ही धर्म का मूलतत्व माना। धर्म और धार्मिक क्रिया–कलाप के प्रति विवेकानन्द की दृष्टि बहुत परिपक्व व सुलझी हुयी थी, इसलिए उन्होंने कभी भी धर्म को धार्मिक पुस्तकों या दार्शनिक तर्क–वितर्कों से नहीं समझा अपितु इसे वे स्व–अनुभूति का विषय मानते थे। धर्म की बाहरी समझ और धार्मिक कर्मकाण्ड व्यक्ति को केवल बाह्य स्तर पर व अस्थायी रूप से ही प्रभावित करते

हैं। वे व्यक्ति के भीतर वह आंतरिक गुणात्मक परिवर्तन नहीं ला पाते, जिसकी जरूरत समस्त मानवता को है। इस कारण वह धर्म की सही समझ के लिए भटकता ही रहता है, भले ही तार्किक रूप से वह कितना ही शक्तिशाली हो। वे कहते हैं–

एक व्यक्ति दुनिया में महानतम दार्शनिक हो सकता है लेकिन धर्म के मामले में वह बच्चा ही रहेगा। जब एक व्यक्ति आध्यात्मिकता की उच्च अवस्था विकसित कर लेता है तब वह समझ जाता है कि स्वर्ग का साम्राज्य उसके भीतर है। (सी डब्ल्यू एस वी 1 2015 पृ.324)

इसलिए विवेकानन्द का जोर लोगों को बौद्धिक बनाने के साथ–साथ आध्यात्मिक बनाने पर भी था क्योंकि आध्यात्मिकता ही वह स्तर है जहाँ 'स्व' व 'पर' का, ऊंच–नीच का भेद नहीं रहताय जहाँ पूरा विश्व एक 'बाजार' नहीं अपितु 'परिवार' लगता हैय जहाँ प्रतिस्पर्धा व ईर्ष्या के बजाय सहयोग, समनव्य व प्रेम को महत्व दिया जाता है। इस आध्यात्मिकता के विकास हेतु उन्होंने न्यूयार्क के 'थाउजंड आइलैंड पार्क' में एक सात सप्ताह (18–06–1895 से 06–08–1895) का आध्यात्मिक रिट्रीट कार्यक्रम भी चलाया था, जिसे आज 'विवेकानन्द कॉटेज' के नाम से जाना जाता है।

एक आध्यात्मिक संत होते हुए भी विवेकान्द की दृष्टि बेहद आधुनिक थी। उन्हें भारत के अतीत पर गर्व था लेकिन उनका सरोकार अतीत की उन बुराईयों को दूर करने पर भी था, जिससे भारत जात–पात, छूआछूत, वैज्ञानिक–तकनीकी पिछड़ापन, गरीबी, अशिक्षा, महिलाओं के प्रति भेदभाव आदि से ग्रस्त था। इनके समाधन हेतु एक आधुनिक दृष्टि जरूरी थी। उन्होंने इन सभी क्षेत्रों में सुधार के लिए बेहद ठोस प्रयास किए। इस संदर्भ में जवाहरलाल नेहरू ने लिखा–

विवेकानन्द के पास अतीत का आधार था और उन्हें भारत की विरासत पर गर्व था, फिर भी जीवन की समस्याओं के प्रति उनका दृष्टिकोण आधुनिक था और वे भारत के अतीत व वर्तमान के बीच एक तरह के सेतु थे।... उदास और पथ–भ्रमित हिन्दू मानस के लिए वे संजीवनी के रूप में आए, उसे स्वावलम्बी बनाया और उसे कुछ प्राचीन मूल्यों से जोड़ा। (नेहरू, 2010 पृ.368)

विवेकानन्द एक युग–दृष्टा थे। अपने गहन अध्ययन और विस्तृत यात्रा के द्वारा उन्होंने पूरे विश्व के कमजोर व मजबूत पक्षों को बखूबी जाना। वे पश्चिम की वैज्ञानिक और भौतिक प्रगति से बहुत प्रभावित थे, लेकिन उनकी चिन्ता थी कि इतनी प्रगति के बावजूद पश्चिम के लोग आन्तरिक रूप से इतने बेचौन व परेशान क्यों हैं। इस विरोधभासी प्रवृत्ति के बारे में वे लिखते हैं–

पश्चिम में सामाजिक जीवन एक हँसी का ठहाका है, लेकिन भीतर से यह एक रुदन–क्रन्दन है। इसकी परिणति सिसकियों में होती है। हँसी और मस्ती केवल सतह पर है, वास्तव में यह तीव्र वेदना से परिपूर्ण है। (सी डब्ल्यू एस वी 8 1964 पृ.261–62)

दूसरी ओर भारत में धर्म की अत्यधिक प्रधानता रही। इस प्रक्रिया में यहाँ के लोग जीवन की आधारभूत जरूरतों से भी वंचित रहे किन्तु विडम्बना देखिए कि इस अभाव की भी लोगों ने दार्शनिक व धार्मिक व्याख्या कर इसे महिमा–मंडित कर दिया और पीड़ित जनता की समस्याओं से कोई सरोकार नहीं रखा।5 शिकागो में 20 सितम्बर 1893 को 'रिलीजन नॉट द क्राइंग नीड ऑफ इण्डिया' शीर्षक से व्याख्यान देते हुए वे कहते हैं–

भारतीयों की जरूरत धर्म नहीं, रोटी है, धर्म तो उनके पास बहुत है। वे रोटी माँगते हैं और हम उन्हें पत्थर देते हैं। भूखे व्यक्ति को धार्मिक शिक्षा देना अपमान हैय किसी भूखे को तत्वमीमांसा पढ़ाना अपमानजनक है। (सी डब्ल्यू एस वी 1 2015 पृ. 20)

इसी प्रकार अलसिंगा पेरुमल को न्यूयार्क से प्रेषित पत्र में वे 19 नवम्बर 1894 को लिखते हैं –

हम मूर्खतापूर्वक भौतिक–सभ्यता का विरोध करते हैं। अंगूर खट्टे हैं... कोई भूखा क्यों रहे?... भौतिक सभ्यता यहाँ तक कि विलासिता भी जरूरी है गरीबों के उत्थान के लिए। रोटी ! रोटी ! मैं ऐसे ईश्वर में विश्वास नहीं करता, जो मुझे यहाँ रोटी न दे सके किन्तु स्वर्ग में शाश्वत आनन्द दे। भारत को उठना होगा, गरीबों को खाना मिलना ही होगा। (सी डब्ल्यू एस वी 4 2013 पृ.375)

विवेकानन्द ने इन दोनों सभ्यताओं,उनकी संस्कृतियों में एक समन्वय की प्रस्तावना की। उनके अनुसार भौतिक विकास आवश्यक है क्योंकि यह मनुष्य के भौतिक शरीर के विकास की आधारभूत जरूरत है लेकिन यह पर्याप्त नहीं क्योंकि मनुष्य केवल भौतिक शरीर ही नहीं है, एक आत्मतत्व भी है। यह आत्मतत्व ही उसे संकीर्णता से ऊपर उठाकर व्यापक दृष्टि देता है। मानव जीवन के संतुलित विकास के लिए उन्होंने इन दोनों में सामंजस्य स्थापित करने पर जोर दिया। 1896 में न्यूयार्क में दिए गए एक व्याख्यान में वे कहते हैं–

मनुष्य जो कि दो आयामों– आध्यात्मिक और भौतिक पर केन्द्रित है, उसमें समायोजन की जरूरत है। आधुनिकता के दौरान मुख्य रूप से यूरोप भौतिक आयाम पर केन्द्रित रहा और एशिया आध्यात्मिक पर। आज के समय में मनुष्य को आध्यात्मिक आयाम पर एक और समायोजन की जरूरत है। आज जब भौतिकता अपने वैभव और शक्ति के चरम पर है, जब मनुष्य भौतिक वस्तुओं पर बढ़ती अपनी निर्भरता से अपने दिव्य स्वरूप को भूलता जा रहा है और पैसा बनाने वाली मशीन में सिमटता जा रहा है, एक समायोजन अपरिहार्य हो गया है।(सी डब्ल्यू एस वी 4 2013 पृ.163)

के पश्चिम के भौतिकवाद का उद्देश्य वैज्ञानिक और भौतिक प्रगति द्वारा बाह्य प्रकृति पर विजय पाना है जबकि भारत के आध्यात्मवाद का उद्देश्य ध्यान व साधना द्वारा अपनी 'आंतरिक प्रकृति' के स्वाभाविक स्वरूप को जानना है। एक व्यक्ति के जीवन में इन दोनों का बहुत महत्व है। समस्या तब आती है जब हम इनमें एक स्थायी विभाजक रेखा खींच देते हैं और मनुष्य को समग्र दृष्टि से समझने में असफल होते हैं। आज के बढ़ते उपभोगतावाद और तकनीकवाद में भौतिकता ही हमारा 'आंतरिक स्वभाव' हो गया है और धर्म एक 'बाह्य स्वभाव' या आडंबर बन गया है तो मानवीय मूल्यों में विचलन होगा ही। ऐसे में आज जरूरत है एक समग्र संतुलित विकास की। फरवरी 1897 में मद्रास (अब चेन्नई) में 'द हिन्दू' समाचार पत्र को 'द अब्रोड एंड द प्रॉब्लम्स एट होम' शीर्षक से दिये एक साक्षात्कार में विवेकानन्द कहते हैं–

भारत को यूरोप से बाह्य प्रकृति पर विजय पाना सीखना होगा, और यूरोप को भारत से आंतरिक प्रकृति पर विजय पाना सीखना होगा। तब वहाँ कोई हिन्दू या यूरोपियन नहीं होगा– वहाँ एक आदर्श मानवता होगी, जिसने आंतरिक और बाह्य दोनों प्रकृति को जीत लिया होगा। हमने मानवता की एक अवस्था का विकास किया है और उन्होंने दूसरी अवस्था का। इन दोनों में सम्मिलन की जरूरत है ।(सी डब्ल्यू एस वी 5 2015 पृ. 216)

विवेकानन्द की इस दृष्टि ने वैश्विक स्तर पर एक गहरी छाप छोड़ी क्योंकि उन्होंने प्रचलित मान्यता से अलग पूरब और पश्चिम को विरोधी नहीं अपितु एक दूसरे के पूरक के रुप में देखा, जहां दोनों एक दूसरे के बिना अधूरे हैं। उनकी इस दृष्टि के इस सम्बन्ध में ए.एल. बाशम लिखते हैं–

मेरा मानना है कि विवेकानन्द विश्व–इतिहास में सदैव याद किए जाएंगे क्योंकि उन्होंने सैद्धांतिक रूप से, जैसा कि डॉ सी ई एम जोड ने एक बार कहा था– 'पूरब से प्रतिवर्ती–जबाव' की शुरूआत की।....वे पहले भारतीय धार्मिक शिक्षक हैं जिन्होंने भारत के बाहर एक छाप छोड़ी।[6] (ज्योर्तिमयानन्द, 1988 पृ.157)

अपने चिन्तन में विवेकानन्द बहुत दूरदर्शी थे। यह उनकी दूरदर्शिता ही थी कि 39 वर्ष की अल्प–आयु में ही उन्होंने इस बात को समझ लिया था कि मानवता के समग्र विकास के लिए पूरब व पश्चिम का मिलना बहुत जरूरी है। उनके द्वारा प्रस्तावित मूल्य केवल किसी देश की धार्मिक संस्थाओं के लिए ही नहीं अपितु वैश्विक स्तर के शैक्षणिक, सांस्कृतिक, सामाजिक व आर्थिक संस्थाओं के लिए भी प्रेरणास्रोत रहे हैं। 8 अक्टूबर 1993 को विश्व धर्म–संसद के शताब्दी समारोह के उद्घाटन भाषण में यूनेस्को के डायरेक्टर जनरल फेडरिको मेयर जारगोजा ने कहा कि 1945 में स्थापित यूनेस्को के लक्ष्यों तथा शिक्षा, संस्कृति, विज्ञान व सहिष्णुता पर विवेकानन्द द्वारा स्थापित रामकृष्ण मिशन (1897) के आदर्शों में अद्भुत समानता है। गरीबी और भेदभाव की समाप्ति के संदर्भ में दोनों के प्रयास अभूतपूर्व हैं। दोनों ने ही मानव संस्कृतियों व समाजों की विविधता को साझी विरासत के एक अपरिहार्य पक्ष के रूप में पहचान दी। (स्वामी विवेकानन्दः न्यू पसपेक्टिव्स,2017 पृ. 456–57) 2013 में स्वामी जी की 150वीं जयंती के अवसर पर ''सिडनी रामकृष्ण सोसायटी'' ने नाटक और पटकथा लेखक एलेक्स ब्राउन को यह दायित्व सौंपा कि वे उनके विचारों को सिडनी ओपरा हाउस में मंचित करें, जिससे उनके संदेशों की सार्वभौमिकता लोगों तक संप्रेषित की जा सके। इस युवा सन्यासी के संदेश पूरे विश्व को सदैव प्रेरित करते रहेंगे ।

पाद–टिप्पणी

1. 9 दिसंबर 2009 को मेलबॉर्न धर्म–संसद के समापन सत्र में बोलते हुए परम पूज्य दलाई लामा ने 'अंतर–धार्मिक संवाद के पुनःप्रवर्तन के लिए' स्वामी विवेकानन्द की प्रशंसा की। उन्होंने एक बेहतर विश्व की स्थापना हेतु हर किसी को स्वामी विवेकानन्द से प्रेरणा लेने की सलाह दी। (प्रबुद्ध भारत, जुलाई, 2018, पृ.27)

2. इस व्याख्यान ने अमेरिका सहित पूरे विश्व को भारत की वैचारिक शक्ति का एहसास करा दिया। जैसा कि प्रेमचन्द ने मई 1908 में 'जमाना' में लिखा– "पश्चिम वालों को आपने पहली बार सुझाया कि धर्म के विषय में निष्पक्ष उदार–भाव रखना किसको कहते हैं। और धर्म वालों के विपरीत आपने किसी धर्म की निंदा न की और पश्चिमवालों की जो बहुत दिनों से यह धारणा हो रही थी कि हिन्दू तअस्सुब के पुतले हैं, वह एकदम चूर हो गयी।..... स्वामी जी की शिक्षा का आधार प्रेम और शक्ति है। निर्भीकता उसका प्राण है और आत्म–विश्वास उसका धर्म है। उनकी शिक्षा में दुर्बलता और अनुनय–विनय के लिए तनिक भी स्थान नहीं था। उनका वेदान्त मनुष्य को सांसारिक दुःख क्लेश से बचाने, जीवन–संग्राम में वीर की भांति जुटने और मानसिक आध्यात्मिक आकांक्षाओं की पूर्ति की समान रूप से शिक्षा देता है।"(निर्मल वर्मा व कमल किशोर गोयनका, संपा., 2015, पृ.953–62)

3. विवेकानन्द को याद करते हुए भारत की इसी सर्व–समावेशी दृष्टि और समृद्ध विरासत का उल्लेख अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा ने 8 नवम्बर 2010 को भारतीय संसद के संयुक्त अधिवेशन को सम्बोधित करते हुए कहा था– "आपने यह दिखाया कि भारत की ताकत,भारत का विचार– उसका सभी रंगों, जातियों और संप्रदायों का मेल है.....यह आस्थाओं की समृद्धि का ही नतीजा है कि हमारे घर के शहर शिकागो में एक शताब्दी पहले एक यात्री – स्वामी विवेकानन्द द्वारा विश्व धर्म–संसद में एक उत्सव मनाया गया था।"

4. इसी समाचार पत्र ने विश्व धर्म संसद के स्वर्ण–जयंती समारोह के अवसर पर 29 अगस्त 1993 के अपने प्रकाशन में लिखा कि 'वे 1893 की संसद के ध्रुव–तारा थे।'(शुद्धिदानन्द, 2014, पृ.49)

5. जैसा कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा लिखित नाटक 'भारत दुर्दशा' में सत्यानाश फौजदार, भारत दुर्दैव से व्यंग्य–स्वरूप कहता है– "महाराज, वेदांत ने बड़ा ही उपकार किया। सब हिन्दू ब्रह्म हो गए। किसी को इतिकर्तव्यता बाकी ही न रही। ज्ञानी बनकर ईश्वर से विमुख हुए, रुक्ष हुएय अभिमानी हुए और इसी से स्नेहशून्य हो गए। जब स्नेह ही नहीं तब देशोध्वार का प्रयत्न कहाँ? बस जय शंकर की।"(श्रीवास्तव, 1999 पृ., 32)

6. रूसी विद्वान रोस्टिलाव राइबाकोव ने अपने लेख 'ही इज डीयर टू द पीपुल ऑफ यू एस एस आर' में लिखा कि कैसे लियो टॉलस्टाय विवेकानन्द के विचारों से प्रभावित थे। टॉलस्टाय ने अपनी डायरी में लिखा–'मैं विवेकानन्द को पुनः पढ़ रहा था। उनके और मेरे विचारों में कितनी साम्यता है।'(ज्योर्तिमयानन्द, 1988, पृ.180)

इसी समाचार पत्रा ने विश्व धर्म संसद के स्वर्ण.जयंती समारोह के अवसर पर 29 अगस्त 1993 के अपने प्रकाशन में लिखा कि 'वे 1893 की संसद के ध्रुव–तारा थे।' शुदिानन्द 2014ः , पृ 49

इसी तरह की बात हिन्दुस्तान समाचार पत्रा 27 नवम्बर 2019, नयी दिल्ली को दिये साक्षात्कार में बिल गेट्स ने भी कही। बिल गेट्स के अनुसार तकनीक के प्रयोग से हमारा समय बचता है, लेकिन उस बचे हुए समय में हमें क्या करना है?

संदर्भ

1. बुर्के, मेरी लुइस, 2013. स्वामी विवेकानन्द इन द वेस्ट, वॉल्यूम 1, कोलकताः अद्वैत आश्रम.
2. 2014. स्वामी विवेकानन्द इन द वेस्ट, वॉल्यूम 2, कोलकताः अद्वैत आश्रम.
3. चौधरी, असीम, 2012. स्वामी विवेकानन्द इन शिकागो: न्यू फाइंडिंग्स, कोलकता : अद्वैत आश्रम.
4. धर, शैलेन्द्र नाथ, 1975. अ कॉम्प्रिहेंसिव बायोग्राफ़ी ऑफ स्वामी विवेकानन्द, मद्रासः विवेकानन्द प्रकाशन केन्द्र.
5. दासगुप्ता, आर के,संपा. 1994. स्वामी विवेकानन्द, ए हंड्रेड इयर्स सिन्स शिकागो: ए कोमोमरेटिव वॉल्यूम, बेलूर: रामकृष्ण मठ एंड रामकृष्ण मिशन.
6. गुप्ता, महेंद्रनाथ, 2019. द गास्पेल ऑफ श्री रामकृष्ण, वॉल्यूम1, (अनु. स्वामी निखिलानन्द) चेन्नई : श्री रामकृष्ण मठ.
7. हैरिस ,रूथ, 2022. गुरु टु द वर्ल्ड : द लाइफ ऐंड लिजेसी ऑफ विवेकानन्द, मैसच्युएट्स : द बेल्क्नप प्रेस ऑफ हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
8. हिज़ इस्टर्न एंड वेस्टर्न ऐडमायरर्स, 1961. रेमिनेसेंसेज़ ऑफ स्वामी विवेकानन्द, कलकत्ता: अद्वैत आश्रम.
9. ज्योर्तिमयानन्द, स्वामी, संपा. 1988. विवेकानन्दः हिज़ गॉस्पेल ऑफ मैन-मेकिंग, पॉण्डिचेरीः ऑल इंडिया प्रैस.
10. मजूमदार, आर सी, 2013. स्वामी विवेकानन्द: ए हिस्टोरिकल रिव्यू, कोलकता: अद्वैत आश्रम.
11. मेधानन्द, स्वामी, 2022. स्वामी विवेकानन्द'ज़ वेदांतिक कॉस्मोपोलिटनिज़्म,न्यूयॉर्क: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
12. नम्बथ, सुरेश, संपा. 2020. द मांक हू टूक इंडिया टु द वर्ल्ड, चेन्नई : द हिन्दू ग्रुप.
13. नेहरू, जवाहरलाल, 2010. द डिस्कवरी ऑफ इंडिया, विद ऐन इंट्रोडक्शन बाइ सुनील खिलनानी, गुडगाँव: पैंगुईन बुक्स.
14. निखिलानन्द, स्वामी, अनु. 2019. द गास्पेल ऑफ श्री रामकृष्ण, वॉल्यूम 1, चेन्नई: श्री रामकृष्ण मठ.
15. निवेदिता, सिस्टर, 2014. द मास्टर ऐज़ आई सॉ हिम, कोलकता : उदबोधन ऑफिस.
16. प्रबुद्ध भारत, संपा. स्वामी नरसिम्हानन्द, जुलाई 2018. कोलकताः अद्वैत आश्रम.
17. रैडिस, विलियम, संपा. 1998. स्वामी विवेकानन्द एंड द मॉडर्नाइजेशन ऑफ हिन्दुइज़्म, नयी दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
18. रोलाँ, रोमाँ, 2012. द लाइफ ऑफ विवेकानन्द एंड द यूनिवर्सल गास्पेल, कोलकताः अद्वैत आश्रम.
19. शर्मा, ज्योर्तिमय, 2014. कॉस्मिक लव एंड ह्यूमन अपैथी: स्वामी विवेकानन्द'ज़ रीस्टेटमेंट ऑफ रिलिजन, नोएडा: हार्पर कोल्लिंस.
20. शुद्धिदानन्द, स्वामी, संपा. 2014. विवेकानन्द ऐज़ द टर्निंग प्वाइंट - द राइज़ ऑफ अ न्यू स्पिरिचुयल वेब, कोलकता: अद्वैत आश्रम.
21. श्रीवास्तव, परमानन्द, संपा. 1999. भारतेन्दु कृत भारत-दुर्दशा, इलाहाबाद : अभिव्यक्ति प्रकाशन.

22. स्वामी विवेकानन्द: न्यू पसपेक्टिव्स, ऐन एन्थोलॉजी ऑन स्वामी विवेकानन्द, 2017. कोलकता : रामकृष्ण मिशन इंस्टीट्यूट ऑफ कल्चर.
23. टैगोर, रबीन्द्रनाथ, 2012. नेशनलिज़्म, नयी दिल्ली: नियोगी बुक्स.
24. तेजसानन्द, स्वामी, 2015. अ शार्ट लाइफ ऑफ स्वामी विवेकानन्द, कोलकताः अद्वैत आश्रम.
25. थापर, रोमिला, नूरानी, ए जी, मेनन, सदानन्द, 2016. ऑन नेशनलिज़्म, नयी दिल्ली: अलेफ.
26. त्रिपाठी, राकेश, 2019. स्वामी विवेकानन्द: द ज़र्नी ऑफ ए स्पिरिचुएल एण्ट्रेप्रेन्योर, नयी दिल्ली: ब्लूम्सबरी.
27. वर्मा, निर्मल व गोयनका, कमल किशोर (संपा.), प्रेमचंद : रंचना-संचयन, 2015. दिल्ली : साहित्य अकादेमी.
28. विवेकानन्द, स्वामी, 1962-2015. द कंप्लीट वर्क्स ऑफ स्वामी विवेकानन्द, 9 वॉल्यूम्स ,कोलकता : अद्वैत आश्रम.
29. वर्ल्ड-वाइड सेलेब्रशन ऑफ स्वामी विवेकानन्द सेंटेनरी 1863-1963, 1965. कलकत्ताःगवर्नमेंट ऑफ वेस्ट बंगाल, इंडिया.